ॐ

परमात्म-प्रकाश और उसके रचयिता

श्रीमान् पं. प्रकाशजी हितैषी शास्त्री, देहली

संपादक, **सन्मति-संदेश**

श्रमण संस्कृति के दर्शन और साहित्य में जो एकात्म भाव लक्षित होता है, उसका मूल कारण इसकी अध्यात्म-विद्या है। यह विद्या सनातन एवं धर्म की अंतःप्राण है। इसमें आत्मिक अलौकिक वृत्तियों का प्रतिष्ठान है। निर्विकल्पात्मक सहज-सहज आत्मानंद की उपलब्धि इसका लक्ष है। जगत् का प्राणि यद्यपि सुखशांति के लिये लालायित है किन्तु भ्रान्तिवश उससे दूर भागता रहा है। उस सहजानंद को प्राप्त स्वानुभवी संतों ने विश्वकल्याण के लिये उस मार्ग का प्रदर्शन किया है जो सदा उनका उपास्य रहा है। यही इसका वर्ण्य विषय है।

इस अध्यात्मिक सन्त परम्परा में योगीन्दु देव का महत्व पूर्ण स्थान है। उनके रचे हुए अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थों में से 'परमात्म-प्रकाश' ग्रन्थ प्रमुख है। जैसा कि इसके नाम से ही विदित है, इस ग्रन्थ में निरंजनदेव, आत्मा, परमात्मा, आत्मज्ञान, जीव की मोहदशा, इन्द्रियसुख और आत्मसुख, मोक्ष-तत्त्व और उससे विमुख जीवन की निरर्थकता, सिद्धि के भावशुद्धि, स्वभाव की उपासना, संसार की क्षण-भंगुरता आदि अनेक आध्यात्मिक विषयों पर सरल और सरस भाषा में बडे ही सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया गया है।

निरंजन देव का निरूपण करते हुए आपने लिखा है, यह निरंजन देव ही परमात्मा है। इसको प्राप्त करने के लिये बाह्याचार की आवश्यकता नहीं। बाहर से वृत्ति हटाकर अन्तर में प्रवेश करने से ही अपने में परमात्मा प्राप्त हो सकता है। मानस सरोवर में हंस के समान निर्मल भाव में ही ब्रह्म का वास होता है। उसे देवालय, शिल्प अथवा चित्र में खोजना व्यर्थ है—

देउ ण देवले णवि सिलए णवि लिप्पई णवि चित्ति।
अखउ णिरंजणु णाणमउ सिउ संठिय समचित्ति॥ १२३॥

आत्म देव देवालय (मंदिर) में नहीं है, पाषाण की प्रतिमा में भी नहीं है, लेप तथा मूर्ति में भी नहीं है। वह देव अक्षय अविनाशी है, कर्म मल से रहित है, ज्ञान से पूर्ण है, ऐसा परमात्मा समभाव में ठहरा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे निरंजन का स्वरूप बतलाते हुए स्पष्ट किया है—

जासु ण वण्णु ण गंधु रसु जासु ण सद्दुण फासु।
जासणु ण जम्मणु मरणु णवि णाउ णिरंजणु तासु ॥ १९ ॥

जासु ण कोहु ण मोहु मउ जासु ण माय ण माणु।
जासुं ण ठाणू ण झाणु जियसो जि णिरंजणु जाणु ॥ २० ॥

जिसके न वर्ण, न गन्ध, न रस, न शब्द, न स्पर्श है। जिसके जन्म, मरण, क्रोध, मद, मोह, मान और माया नहीं है। जिसके कोई गुणस्थान, ध्यान भी नहीं है उसे निरंजन कहते हैं।

परमात्मा की परिभाषा करते हुए कहा है—

जसु अब्भंतरि जगु वसइ जगव्यंतरि जो जि।
जगि जि वसंतु वि जगु जिण वि मुणि परमप्पउ सो जि ॥

जिसकी आत्मा में जगत् बस रहा है (प्रतिबिंबीत) हो रहा है। वह जगत् में निवास करता हुआ भी जगत् रूप नहीं होता उसीको परमात्मा जानो।

जीवन के चरम सत्य की तर्क संगत अनुभूति एवं अन्तश्चेतना की जागृति आत्मा को ऐसी अवस्था में केन्द्रित कर देती है जो ईश्वर को साक्षात्कार का संकेत देती है। परमात्मा की ओर अग्रसर करनेवाली प्रबुद्ध चेतना स्वयं में ही अद्वैत भाव से परमात्मा का दर्शन करने लग जाती है। इसको ग्रन्थकार ने कहा है—

मणु मिलिपउ परमेसरहं परमेसरु वि मणस्स।
वीहि वि समरसि हूवाहं पुज्ज चडावउं कस्स ॥ १२५ ॥

जिसका मन भगवान् आत्मा से मिल गया तन्मयो हो गया और परमेश्वर भी मनसे मिल गया, इन दोनों के समरस होने पर मैं अब किसकी पूजा करूँ?

आध्यात्मिकता का उद्देश उस परम सत्य का साक्षात्कार करना है जो रिद्धि, सिद्धि और धन सम्पदा से परे है। वह तो इन जड चेतन का ज्ञाता दृष्टा मात्र है। उनका परिणमन जब जैसा होता है उसे वह जानता भर है, उसमें हर्ष विषाद नहीं करता। यही उसका समता भाव है।

दुक्खु वि सुक्खु वि बहु विहउ जीवहं कम्मु जणेह।
अप्पा देखइ मुणई पर णिच्छउ एवं भणेई ॥६४॥

जीवों के अनेक तरह के सुख दुख दोनों ही कर्म ही उपजाता है आत्मा उपयोगमयी होने से केवल देखता जानता है, इस प्रकार निश्चयनय कहता है। यहां सुख दुख सामग्री का सम्बन्ध कर्म से है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने शिष्य प्रभाकर भट्ट को उद्‌बोधित करने के लिए ही इस ग्रन्थ की रचना की गई है। इसलिए सबसे प्रथम शिष्य प्रश्न करता है—

चउ गइ दुक्ख हँ तत्ताहँ जो परमप्पउ कोइ ।
चउ-गइ दुक्ख विणासयरु कहहु पत्थाएं सो वि ॥१०॥

चार गतियों के दुखों से तप्तायमान (दुखी) जीवों के दुखसे छुडानेवाला कोई चिदानंद परमात्मा है वह कौन है, हे गुरुवर उसे बतलाइये ।

इसका उत्तर देते हुए योगीन्दु मुनि ने कहा है —

जेहउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहि णिवसइ देउ ।
तेहउ णिवसइ बंभु परु देह हँ मं करि पेउ ॥२६॥

जैसा कर्मरहित, केवल ज्ञानादि से युक्त प्रकट कार्यसमयसार सिद्ध परमात्मा परम आराध्य देव मुक्ति में रहता है वैसा ही सब लक्षणों से युक्त शक्ति रूप कारण परमात्मा इस देह में रहता है। इसलिए हे प्रभाकर भट्ट ! तू सिद्ध भगवान् और अपने में भेद मत कर !

आचार्य श्री ने यहां स्पष्ट किया कि संसार दुख से छुडाने वाला तेरा जीव नामा पदार्थ इस देह में रहता है, वही परमात्मा उपादेय है। दूसरा कोई परमात्मा तुझे दुख से नहीं छुडा सकता है।

इससे आगे उपालम्भ देते हुए योगीन्दु देव कहते हैं—

जें दिट्ठें तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व किया इँ ।
सो परु जाणहि जो इया देहि वसंतु ण काइँ ॥२७॥

जिस परमात्मा के देखते पूर्वोपार्जित कर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं उस सदानंद रूप देह में रहने वाले निज परमात्मा को तू क्यों नहीं जानता है ?

इस जीव को संसार के दुख से अन्य कोई परमात्मा नहीं छुड सकता है। अपना कारण-परमात्मा ही अपनी शक्ति के बल पर कार्य परमात्मा (सिद्ध) बन सकेगा। यहां कर्ता वाद का निषेध करने के लिए ग्रन्थकार ने कहा है कि न तो कोई परमात्मा और न कर्म आदि तेरे बनाने बिगाडने वाले हैं संसार का अन्य कोई भी पदार्थ तेरे लिए साधक बाधक नहीं है। उन्होंने आत्म पुरुषार्थ की प्रसिद्धि करने के लिए उपादान (निजशक्ति) को जागृत करने का संदेश प्रवाहित किया है। निज परमात्मा ही प्रत्येक प्राणि के लिए साध्य है और वही साधक है। साधक ही उसी की साधना से शक्तिरूप कारण-परमात्मा से व्यक्तिरूप कार्य परमात्मा बन जाता है।

निज परमात्मा का ज्ञान कराने के लिए सबसे पूर्व प्रत्येक प्राणि को भेद विज्ञान करना आवश्यक है। क्योंकि स्वपर भेद विज्ञान के बिना उस निज परमात्मा का ज्ञान कैसे हो सकता है। अतः योगीन्दु देव कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवाजीव म एक्कु करि लक्ख भेएँ मेउ।
जो परु सो परु भणमि मुनि अप्पा अप्पु अमेउ ॥३०॥

हे भाई ! तू जीव और अजीव को एकमत कर। इन दोनों को लक्षण स्वभाव भेद से जो देह कार्य और रागादि विकार हैं उन्हें पर मान और आत्मा को अभेद मान। क्योंकि कभी कोई भी द्रव्य परद्रव्य रूप परिणत नहीं हो सकता है। प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव ऐसा ही है। जीव अपनी अज्ञानता के कारण दो द्रव्यों का संक्रमण भी मानता है, किन्तु उसके मान लेने से द्रव्य अपना स्वभाव कभी तीन काल में भी नहीं छोड सकता है। द्रव्य के गुण और उसकी पर्याय न बाहरसे आती है और न निकलकर बाहर जाती है। दो द्रव्यों में परस्पर में न व्याप्य व्यापक और न वास्तविक कारण कार्य संबंध है। मात्र व्यवहार से निर्मित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। यहाँ ग्रन्थकार ने द्रव्य की अपनी सीमा और स्वतंत्रता की घोषणा की है। जिसके समझने पर ही आत्मकल्याण प्रारंभ होता है।

परमात्म-प्रकाश में दो अधिकार हैं, उनमें से प्रथम अधिकार में त्रिविधात्मा की प्ररूपणा है। द्वितीय अधिकार में मोक्ष स्वरूप का वर्णन है। इसके रचयिता योगीन्दु देव श्रुतधरों की उस शृंखला की कडी है, जिसमें आचार्य कुन्दकुन्द, अमृतचन्द्र, समन्तभद्र जैसे प्रभावशाली चिन्तक मनीषीयों की गणना की जाती है, जिन आचार्यों की अमर लेखनी का स्पर्श पाकर श्रुत सूर्य के प्रकाश का संवर्धन हुआ है।

अपने अन्तः प्रकाश से सहस्रो मानवों के तमःपूर्ण जीवन में ज्योति की शिखा प्रज्वलित करने-वाले अनेक साधकों और सन्तों का जीवन वृत्त आज भी अन्धकार में है। ये साधक सन्त अपने भौतिक जीवन के सम्बन्ध में कुछ कहना या लिखना अनावश्यक समझते थे। क्योंकि अध्यात्म जीवी को भौतिक-जीवन से कुछ प्रयोजन नहीं रह जाता है। यही कारण है कि आज हम उन मनीषीयों के जीवन के सम्बन्ध में प्रामाणिक और विस्तृततः तथ्य जानने से वंचित रह जाते हैं। अतः उनके जीवन वृत्त को जानने के लिये कुछ यत्र तत्र के प्रमाणों का आश्रय लेकर कल्पना की उडाने भरते हैं या अत्यल्प ज्ञातव्य ही प्राप्त कर पाते हैं।

रचयिता का नामकरण

श्री योगीन्दु देव भी एक ऐसे साधक और कवि हो गये हैं जिनके विषय में प्रामाणिक तथ्यों का अभाव है। यहां तक कि उनके नाम, काल निर्णय और ग्रन्थों के सम्बन्ध में काफी मतभेद है। परमात्म-प्रकाश में उनका नाम 'जोइन्दु' आया है ब्रह्म देव 'परमात्म-प्रकाश' की टीका में आपको सर्वत्र 'योगीन्द्र' लिखते हैं। श्रुत सागर ने श्री 'योगीन्द्रदेवनाम्ना भट्टारकेण' कहा है। परमात्म-प्रकाश' की कुछ प्रतियों में 'योगेन्द्र' शब्द आया है। योगसार के अन्तिम दोहे में जोगिचन्द्र नाम आया है। आमेर शास्त्र भण्डार की एवं टोलियों के मंदिर की दो हस्तलिखित प्रतियों में 'इति योगेन्द्र देव कृतप्राकृत दोहा के आत्मोपदेश सम्पूर्ण' लिखा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने अपने को 'जोइन्दु' या 'जोगचन्द (जोगिचन्द) ही कहा है। यह परमात्म-प्रकाश और योगसार में प्रयुक्त नामों से स्पष्ट है। 'इन्दु' और 'चन्द्र' पर्यायवाची शब्द है। व्यक्तिवाची संज्ञा के पर्यायवाची प्रयोग भारतीय काव्य में पाये जाते हैं। डॉ. ए. एन्. उपाध्ये ने भागेन्दु (भागचन्द) शुभेन्दु (शुभचन्द) आदि उद्धरण देकर इस लक्ष्य की पुष्टि की है। श्री ब्रह्मदेव ने अपनी टीका में 'जोइन्दु' का संस्कृत रूपान्तर 'योगीन्द्र' कर दिया है। इसी आधार पर परवर्ती टीकाकारों और लिपिकारों ने 'योगीन्द्र' शब्द को मान्यता दी किन्तु यह प्रयोग अशुद्ध है। कवि का वास्तविक नाम 'जोइन्दु' 'योगीन्दु' ही है।

ग्रन्थ का निर्माणकाल

नामकरण के समान उनके कालनिर्णय पर भी मतभेद है। विद्वानों ने उनको ईसा की छटी शताब्दि से लेकर बारवीं शताब्दि तक अनुमानित किया है हिन्दि साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् आ. हजारीलाल जी द्विवेदी आपको आठवी नवीं शताब्दि का मानते हैं। श्री. मधुसूदन मोदी दसवीं शती तथा उदयसिंह भटनागर ने खोज कर लिखा है 'प्रसिद्ध जैन साधु जोइन्दु, जो महान् विद्वान, वैयाकरण और कवि था, संभवतः चितौड का ही निवासी था इसका समय दशमी शती था। हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध इतिहास भाग १ में आपको ग्यारहवीं शती से पूर्व का माना है। डॉ. कामताप्रसाद जैन आपको बारहवीं शताब्दि का पुरानी हिन्दी का कवि मानते हैं। श्री. ए. एन्. उपाध्याय ने उक्त तर्कों का खंडन करते हुए योगीन्दु को छटी शताब्दि का प्रमाणित किया है। इन मतभेदों के कारण अभी तक सुनिश्चित समय का निर्णय नहीं हो पाया है।

हजारीप्रसाद जी द्विवेदी का मत यह है की इस शताब्दि के योगियों की भाषा और भाव से जोइन्दु की भाषा और भाव मिलते जुलते हैं। इस शताब्दि में ही बाह्याचार का विरोध, आत्मशुद्धि पर बल शरीरादि से ममत्व के त्याग, तथा स्वसंवेदन के आनंद के उपभोग की प्रतिष्ठा रही है। किन्तु वे विद्वान जैन साहित्य के इतिहास को उठाकर देखें तो जैनधर्म ने हमेशा आत्म प्रतिष्ठा पर बल दिया है। और प्रत्येक शताब्दि में ऐसे अनेक जैन संत होते रहे हैं, जिन्होंने अध्यात्म का विशेष प्रचार एवं प्रसार किया है।

राहुलजी ने आपको आठमी शती का माना है। वे योगीन्दु की मृत्यु तिथि भी सन ७८० मानते हैं। आठवी शताब्दि के प्रारंभ में एक तरह से सभी धर्मों में आध्यात्मिक क्रान्ति हुई थी, जिसमें आत्मा और परमात्मा के विषय में विशेष अन्वेषण एवं विचार विनिमय हुआ है। राहुलजी के उक्त कथन से यही ध्वनि निकलती है कि योगीन्दु मुनि आठवीं शती से पूर्व के नहीं है।

भाषा की दृष्टि से भी विचार करनेपर परमात्मा प्रकाश का रचनाकाल आठवीं शती ही ठहरता है। इस ग्रंथ की भाषा अपभ्रंश है। अपभ्रंश भाषा एक परिष्कृत साहित्यिक भाषा के रूप में कब आई? इसपर भी विद्वानों में मतभेद है। वैसे अपभ्रंश शब्द काफी प्राचीन है किन्तु भाषा के रूप में इसका प्रयोग छटी शताब्दि से पूर्व नहीं मिलता। (हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ. ६-डॉ. नामवरसिंह।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत भाषा क्लिष्ट थी, अतः उसके पश्चात् प्राकृत, पाली, अपभ्रंश क्रमशः अति अश्लिष्ट होती गई। उसमें सरलीकरण की प्रवृत्ति आती गई। धातुरूप, कारकरूप आदि कम होते गये। अपभ्रंश तक आते आते भाषा का अश्लिष्ट रूप अधिक स्पष्ट हो गया। यह भाषा हिन्दी के अति निकट है। श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने तो अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी ही माना है और अपभ्रंश साहित्य के अनेक उद्धरणों का विश्लेषण करके वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे है की यह उद्धरण अपभ्रंश कहे जाय किन्तु यह उस समय की पुरानी हिन्दी ही है। वर्तमान हिन्दी साहित्य से उनका परंपरागत संबंध वाक्य और अर्थ से स्थान स्थान पर स्पष्ट होगा।? (पुरानी हिन्दी, पृ. १३०)

भाषा के विकास में सक्रान्ति युग आये हैं, जब कि एक भाषा अपने स्थान से च्युत होने लगती है और दुसरी भाषा उसका स्थान ग्रहण करने के लिये सक्रिय हो उठती है। ऐसे सक्रान्ति युग, संस्कृत, पालि, पालि–प्राकृत, प्राकृत–अपभ्रंश और अपभ्रंश–हिन्दी के समय में आये है। छटी शताब्दि को प्राकृत–अपभ्रंश का संक्रान्ति युग माना जाता है जब कि प्राकृत के स्थानपर अपभ्रंश साहित्यिक भाषा का स्थान ले रही थी और कवि गण अपभ्रंश की ओर झुक रहे थे। किन्तु अभी तक अपभ्रंश का स्वरूप निर्णीत नहीं हो सका था। उसके अनेक प्रयोग हिन्दी जैसे थे। योगीन्दु मुनि के परमात्म प्रकाश और योगसार की जो भाषा है उसे हम छटी शताब्दि की नहीं मान सकते क्यों कि उस भाषा में हिन्दी जैसा अत्यधिक सरलीकरण आ गया था। देखिये योगसार के दोहे हिन्दी के कितने निकट हैं—

देहा दिउ जे परि कहिया ते अप्पणु ण होहिं।
इउ जाणे विण जीव तुह अप्पा अप्प मुणें हि॥ ११॥

चउ राशि लक्खहिं फिरउं कालु अणाई अणंतु।
पर सम्मत्तु ण लद्ध जिय एहउ जाणि णि मंतु॥ २१॥

" हेमचन्द्र ने अपने सिद्ध हेम शब्दानुशासन में आठवे अध्याय में प्राकृत व्याकरण पर विचार किया है। उन्होंने व्याकरण की विभिन्न विशेषताओं के कारण प्रमाण रूप में अपभ्रंश रचनाओं को उद्धृत किया है। ये उद्धरण पूर्ववर्ती एवं समकालीन ग्रंथकारों की रचनाओं से लिये गये हैं। हेमचन्द का समय सं. ११४५ से १२२९ माना जाता है। अधिकांश उद्धरण आठवी नवीं और दशमी शताब्दि के हैं। परमात्मप्रकाश के भी तीन दोहे थोडे अंतर के साथ हेमचन्द्र के व्याकरण में पाये जाते हैं। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि हेमचन्द्र ने आठवीं शताब्दि से १२ वीं शताब्दि तक की अपभ्रंश पर विचार किया है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि योगीन्दु मुनि आठवीं शताब्दि के अंत अथवा नवमी के प्रारंभ में हुए होंगे। डॉ. हरिवंश कोछड ने भी योगीन्दु का समय आठवीं नवमीं शताब्दि माना है। उन्होंने डॉ. उपाध्ये के मत का खंडन करते हुए लिखा है कि चण्ड के प्राकृत लक्षण में परमात्मप्रकाश का एक दोहा उद्धृत किया हुआ मिलता है, जिसके आधार पर डॉ. उपाध्ये योगीन्दु का समय चण्ड से पूर्व छठी शताब्दि मानते हैं किन्तु संभव है कि वह दोहा दोनों ने किसी दुसरे स्रोत से लिया हो। इसलिये इस युक्ति से हम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुंच सकते। भाषा के विचार से योगीन्दु का समय आठवीं शताब्दि के निकट प्रतीत होता है।" (अपभ्रंश साहित्य, पृ. २६८)

ग्रन्थकर्ता की अन्य रचनाएं

योगीन्दु के नाम की तरह उनकी रचनाओं में भी मतभेद है। ग्रन्थ परम्परा से निम्न लिखित ग्रन्थ उनके रचित कहे जाते हैं—१. परमात्मप्रकाश, २. योगसार, ३. अध्यात्म संदोह, ४. नौकार श्रावकाचार, ५. सुभाषित तंत्र और ६. तत्वार्थटीका। इनके सिवा योगीन्दु के नाम पर तीन ग्रन्थ और भी प्रकाश में आ चुके हैं, उनके नाम है दौहा १. पाहुड, २. अमृताश्शीति, ३. निजात्माष्टक। इनमें से ३–५–६ के विषय में परिचय उपलब्ध नहीं है।

अमृताश्शीति प्रेरणात्मक उपदेश प्रधान रचना है। अंतिम पद में योगीन्द्र शब्द आया है। यह रचना योगीन्दु मुनि की ही है, इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं है।

निजात्माष्टक प्राकृत भाषा का ग्रन्थ है। इसके भी रचयिता का भी सुनिश्चित निर्णय नहीं किया जा सका है।

नौकार, श्रावकाचार और सावय धम्म दोहा में श्रावकों के सदाचार का सुन्दर वर्णन है। इनके रचयिताओं में तीन व्यक्तियों के नाम लिए जाते है—योगीन्दु, लक्ष्मीधर और देवसेन। हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास में योगीन्दु को सावय धम्म दोहा का रचयिता प्रदर्शित किया है। इन की कतिपय हस्त लिखित प्रतियों में 'जोगेन्दुकृत' लिखा है। सावय धम्म दोहा की तीन हस्तलिखित प्रतियां ऐसी भी हैं जिसमें कवि का नाम 'लक्ष्मीचन्द्र' लिखा है। इसका संपादन डॉ. हिरालाल जैन ने किया है और उन्होंने उसकी भूमिका में देवसेन को ग्रन्थकर्ता अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है। देवसेन दशमीं शताब्दि के कवि थे उन्होंने दर्शनसार और भावसंग्रह आदि ग्रन्थों को भी रचना की थी।

'दोहा पाहुड' के लिए दो रचयिताओं का नाम आता है। मुनि रामसिंह और योगीन्दु। डॉ. हिरालालजी ने ही इसका संपादन किया है। और मुनि रामसिंह को इसका कवि माना है।

अब परमात्मप्रकाश और योगसार ही ऐसे ग्रन्थ रह जाते हैं। जिनके वास्तविक रचयिता योगीन्दु मुनि को माना जा सकता है। परमात्मप्रकाश के दो अधिकारों में ३३७ दोहे हैं। इसमें सर्वत्र अपने शिष्य प्रभाकर भट्ट के ज्ञान संपादनार्थ एवं उसके आत्मलाभार्थ संबोधन किया गया है। रचना के प्रारंभ में प्रभाकर भट्ट ने संसार दुख से छूटने के उपाय की जिज्ञासा प्रकट की थी, उसी के फलस्वरूप इस परमात्म–प्रकाश की रचना की गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org